# व्यंग्य और सामाजिक यथार्थ

**रणजीत कुमार सिन्हा**
प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
खड़गपुर कॉलेज, इन्दा खड़गपुर ,
जिला –पश्चिम मेदिनीपुर- 721305
मो-9434153501

**व्यंग्य** का हिंदी साहित्य में प्रचलन काव्य के क्षेत्र में कबीर से होता है। कबीर हिंदी काव्य साहित्य में व्यंग्य के जनक माने जाते हैं। वैसे तो सूर के काव्य में भी व्यंग्यात्मक उक्तियाँ देखने को मिलती हैं। पर जितनी चोट कबीर करते हैं वैसा सूरदास में नहीं मिलता, आधुनिक हिंदी साहित में भारतेंदु एवं उनकी मण्डली इस विधा को अपनाते हुए अपने विचारों को प्रकट करते हैं, खास कर निबंध साहित्य में, गद्य साहित्य में प्रेमचंद का साहित्य भी व्यंग्य को स्थापित करता नज़र आता है। हरिशंकर परसाई ने हिंदी व्यंग्य विधा को एक नयी पहचान दी। हिंदी साहित्य में स्थापित व्यंग्य साहित्य का श्रीगणेश करने का श्रेय श्रीलाल शुक्ल का है। श्रीलाल शुक्ल के बाद से तो हिंदी व्यंग्य साहित्य में व्यंग्य कारों की जमात तैयार हो गई। खासकर 1960 के दशक में हिंदी व्यंग्य साहित्य को एक विशेष स्थानाधिकारी माना गया जो आज भी साहित्य को समृद्ध करता दिख रहा है।

1960 के बाद व्यंग्य एक स्वतंत्र विधा के रूप में साहित्य में स्थापित हुआ। व्यंग्य का विकास तीव्रगति से होने के पीछे जो मुख्य कारक है वो है – सामाजिक, राजनीतिक अवसरवादिता, पतनशीलता, जीवनमूल्य, संवेदनहीनता आदि विद्रूप अपने चरम पर पहुँचे, 1960 के बाद भारतीय राजनीति में जो चित्र सामने आये थे जो परिवर्तन घटित हुए व्यंग्य में उन्को प्रमुख स्थान मिलता गया।

1960 के बाद ही व्यंग्य साहित्य ने व्याप्त रूप से एक अलग स्वतंत्र पहचान क्यों बनाई यह सवाल बहुत महत्वपूर्ण है। कारण साठोत्तर युग मूल्यों की अस्थिरता का युग है। अस्थिरता के इस दौर में आम जन मानस अपनी सांस्कृतिक विरासत, सामाजिक जीवन में नैतिक व मानवीय मूल्यों से कटता जा रहा था, जिसके पीछे का कारण या आजादी के बाद जीवन शैली में कोई खास बदलाव न आना। 1962 में चीन का आक्रमण, 1965 में पाकिस्तान का आक्रमण फिर देश में नक्सलवाद का उदय। तो दूसरी तरफ नेहरु की

नीतियों से असंतुष्ट होकर प्रादेशिक एवं जातिय स्वार्थों का पोषण करनेवाले राजनीतिक दलों का सरकार में सक्रिय भूमिका। राजनीतिक नेताओं का दोगलापन, चरित्रहीनता, जुमलाबाजी, दायित्व से पलायन व दलबदल राजनीति, सरकारी योजनाओं की विफलताएं मूलतः व्यंग्यकारों को कच्चा माल मुहैया करा दी।

भारतीय समाज में व्याप्त मूल्यहीनता का मुख्य कारण शिक्षा नीति है जिसे साहित्य में प्रेमचंद ने 1920 -1926 में ही अवगत करा दिया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व मैकाले द्वारा भारत में जिस प्रकार की शिक्षा और शिक्षण –प्रणाली की स्थापना की गई थी वही आज भी लागू है। आज तो शिक्षा और शिक्षण संस्थानों का जो रवैया देखने को मिल रहा है। वह देश और समाज को केवल और केवल भ्रमित करने हेतु ही दीख रहा है। सुदर्शन मजीठिया ने अपनी रचना-शिक्षा और संस्कार में शिक्षा के गिरते स्तर पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि- "इस देश में समाज को न तो अस्पतालों की आवश्यकता है न ही शिक्षण संस्थानों की। आज की शिक्षा प्रणाली में अक्ल और मेहनत की जरुरत नहीं है। हर पुस्तक की गाईड मिलती है। हर एक प्रोफ़ेसर की कीमत है। हर कुलपति की कीमत है। यूनिवर्सिटियों राजनैतिक नेता और चीटियों की संकुचित राजनीति के धुल और धुंए से भरी पड़ी है।"[1]

वर्तमान शिक्षा संस्थान आज कहीं राजनीति के कारण तो कहीं स्थानीय नेताओं के कारण तो कहीं शिक्षकों की आज़ादी कह लें, प्रेम के चलते राजनीति का अखाड़ा बने हुए है – "शिक्षा व्यवस्था की हालत इतनी ख़राब और अव्यवहारिक है कि पी.एच.डी के शोध छात्र रंगानाथ से जब ट्रक ड्राइवर पूछता है कि आजकल क्या कर रहे हैं तो जवाब मिलता है – "घास खोद रहा हूँ। अंग्रेजी में इसी को रिसर्च कहते हैं।" श्रीलाल शुक्ल प्राचार्य कक्ष का हाल बताते हुए लिखते हैं- "नंगे बदन पर लगभग एक पारदर्शक साड़ी लपेटे कोई फिल्म एक्ट्रेस एक आदमी की ओर लड्डू जैसे बढ़ा रही थी। वहीँ शराब की फर्म का पं. जवाहरलाल नेहरु का लाल गुलाब वाला कैलेंडर भी शोभा पा रहा था "[2]

आज सम्पूर्ण शिक्षा-व्यवस्था द्रोपदी की तरह निरीह असहाय अवस्था में खड़ी है जहाँ कोई भी उसका चीर –हरण कर सकता है। शिक्षा संस्थानों में जमे हुए तथाकथित बुद्धिजीवी को श्री लाल शुक्ल विश्वविद्यालयों का कुंभीपाक कहते हुए लिखे हैं- "विलायत का एक चक्कर लगाने के लिए यह साबित करना पड़ जाय कि हम अपने बाप की औलाद नहीं है तो साबित कर देंगे, चौराहों पर दस जूते मार लो, पर एक बार अमेरिका भेज दो, ये है बुद्धिजीवी।"[3]

आजकल तो विदेश भ्रमण के लिए शिक्षण समुदाय हर-तरह का हथकंडा अपनाता दिख रहा है। वर्तमान समय में शिक्षा –संस्थान विद्या का केंद्र न रहकर दुकान बन गये हैं। संचालकों का लक्ष्य सेवा-भावना न रहकर धन कमाना रह गया है। और जो कुछ बचा था वर्तमान सरकार शिक्षा को प्राइवेटाईज करके पूरी करने पर तुली है। श्रीलाल शुक्ल अपनी रचनाओं में शिक्षा जगत से जुड़े-विसंगतियों का चित्रण एवं व्यंग्य करते है। छात्र, अध्यापक, परीक्षा-पद्धति, कॉलेज की प्रबंधन समीति, शोध –प्रक्रिया आदि में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं चारित्रिक विसंगतियों पर ये सार्थक व्यंग्य करते है..."ये विद्यार्थी नहीं बल्कि वैज्ञानिक प्रयोगों में आने वाले

ऐसे सूअर हैं जिन्हें शिक्षा नीति की मेज पर लिटाकर पिछले कई सालों की भीड़ –भाड़ द्वारा उनकी वाचालता को मूक बनाने की कोशिश की गई है।"[4]

वर्तमान समय में शिक्षका का काम केवल छात्रों को पढाना ही नहीं रह गया है। पढ़ाना तो आजकल प्राथमिकता में नहीं आता है। आजकल जो शिक्षक का काम है उस पर व्यंग्य करते हुए श्रीलाल शुक्ल लिखते हैं –"शिक्षक का काम लड़ाई पर अफ़सोस जाहिर करना, वक़्त से पहले मिली हुई छुट्टी में अपनी पीठ के बल लेटकर छत को ताकना और वक़्त से तनख्वाह का चेक हासिल करना है। मैं वही कर रहा हूँ और अपने लड़कों से जितनी दूर हूँ। उतनी ही दूर अपने को किताबों से पाकर मायूसी का नहीं, एक नैतिक विजय का अनुभव करता हूँ।"[5]

इससे आप समझ सकते हैं कि नैतिकता का विचार देने वालों का नैतिक विजय से क्या अभिप्राय है। भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन से लेकर जयप्रकाश के आपातकाल के समय में विद्यार्थी जिस तरह से आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाते दिखे वे आजादी के बाद छात्रों का राजनीति रंग में रंग जाना और केवल डिग्री लेकर बेरोजगार होकर बैठ जाना। शिक्षा व्यवस्था की पोल –खोलती है। रवीन्द्रनाथ त्यागी ने वर्तमान शिक्षा तंत्र, छात्रों का कुंठा ग्रस्त होना, तोड़-फोड़ हड़तालें आदि पर विचार देते लिखते हैं – "जहाँ तक लड़कों का प्रश्न है। मेरी सलाह है कि वे कुछ रचनात्मक कार्य कर ले। रेल की पटरी उखड़ना, सरकारी बसे जलाना, डाकखाना लूटना, पुलिस के साथ हाथा पाई करना - यही सभी कुछ रचनात्मक कार्यों की परिधि में आता है। बड़ी बात यह है कि इन क्षेत्रों में अभी इतना काम होने को पड़ा है आपके बेकार रहने का प्रश्न ही नहीं आता।"[6]

डॉ. नरेंद्र कोहली कॉलेज के स्टाफ रूम का वर्णन करते हुए लिखते हैं- "यहाँ सच्चा स्वराज्य है। यहाँ वे लोग बसते हैं जो केवल बोलते हैं, सुनते नहीं है – यह स्टाफ रूम है।"[7] आगे नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि स्टाफ रूम में बेहूदी, असंगत बाते बहुत होती है, बौद्धिक स्तर के बहुत कम। पानी अतीत में जहाँ परम्परागत रूप से गुरुकुल की व्यवस्था चल आ रही थी, जहाँ ज्ञानार्जन हेतु-घर-परिवार को छोड़ गुरुकुल में रहना पड़ता था आज वर्तमान पाश्चात्य का अनुकरण हमें किस ओर ले जा रही। अध्यापकवर्ग, जो राष्ट्रनिर्मित है वह विद्यार्थियों का निजी स्वार्थ पूर्ति हेतु शतरंज के मोहरों की तरह इस्तेमाल करता है। अफवाहे फैलाता है, दुरंगी बातें करता है। एक ओर विद्यार्थियों को पथभ्रष्ट करता है दूसरी ओर अधिकारियों का चमचागिरी करता व प्रिंसिपल की गुडबुक्स में रहना चाहता है। अध्यापक कक्षाएं नहीं लेते, छात्र कक्षा में नहीं बैठते, यही आज के गुरु शिष्य की भूमिका रह गई है।

गुरु-शिष्य संबंधों पर व्यंग्य करते हुए हरिशंकर परसाई ने अपने निबंध 'एकलव्य ने गुरु को अंगूठा दिखाया' में लिखा है और पौराणिक उद्धरण द्वारा समकालीनता के साथ दिखाते हैं- "हाँ, पर उसमें इसमें बड़ा अंतर है। वह पुण्य युग था, यह पाप युग है। उस समय एकलव्य ने बिना तर्क गुरु को अंगूठा काटकर दे दिया। इस एकलव्य ने गुरु को अंगूठा दिखाया है।"[8]

हिंदी साहित्य में व्यंग्य ने समाज में व्याप्त तमाम मूल्यहीनता, पोंगापंथी, भ्रष्टाचार और स्वार्थ-लोलुपता पर व्यंग्य किया है। यह परम्परा कबीर से शुरू होकर परसाई द्वारा स्थापित होता है और श्रीलाल शुक्ल, नामवर सिंह, नरेंद्र कोहली, शरद जोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी, नागार्जुन आदि से होते हुए हरीश नवल सुरेश कांत, प्रेमजनमेजय, विष्णु नागर, सुशील सिद्धार्थ आदि के माध्यम से सामाजिक विसंगतियों के प्रति हमें अवगत कराती नज़र आ रही है।

**संदर्भ :**


1. मुख्यमंत्री का डंडा-सुदर्शन मजीठिया –राजकमल प्रकाशन ,दिल्ली ,पृष्ठ-41
2. राग-दरबारी ,श्रीलाल शुक्ल .पृष्ठ-41
3. वही पृष्ठ-79
4. वही पृष्ठ- 298-299
5. वही पृष्ठ-88
6. शोक सभा,रवीन्द्रनाथ त्यागी ,नेशनल पब्लिशिंग हाउस,दिल्ली 1974 ,पृष्ठ-69
7. पाँच एब्सर्ड उपन्यास –नरेन्द्र कोहली ,नेशनल पब्लिशिंग हाउस ,1972 ,पृष्ठ-5
8. सदाचार का ताबीज ,हरिशंकर परसाई ,राजकमल प्रकाशन .दिल्ली ,पृष्ठ- 13